जैनधर्मकी कुछ भूगोल-खगोली मान्यताएँ और विज्ञान

स्वामी सत्यभक्त. सत्याश्रम, वर्धा, महाराष्ट्र

जबसे मनुष्यके पैर चन्द्रमा पर पड़े हैं, तबसे सभीके मन मानवकी इस विजयसे उल्लसित हैं। अब मनुष्य कई बार चन्द्रमा पर हो आया है और उसके सम्बन्धमें पर्याप्त जानकारी प्राप्त हुई है। जहाँ सामान्य मानव समाजके लिये यह जानकारी उसकी प्रगतिका प्रतीक प्रतीत होती है, वहीं भारतीय धर्म जगतमें इन तथ्योंसे कुछ परेशानी हुई है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमाके वैज्ञानिक विवरण धार्मिक ग्रन्थोंमें दिये गये विवरणसे मेल नहीं खाते। इन वैज्ञानिक उपलब्धियोंके उत्तरमें जैन समाज विशेष प्रयत्न कर रहा है। वह त्रिलोक शोध संस्थान और भू-भ्रमण संस्थानके माध्यमसे जंबूद्वीपका नक्शा बना रहा है और पर्याप्त प्रचार साहित्य प्रकाशित कर रहा है। इस साहित्यमें शास्त्रीय मन्तव्योंका विविध तर्कों और प्रमाणोंसे पोषण किया जा रहा है।

अपने इस लेखमें मैं कुछ ऐसी जैन मान्यताओंके विषयमें बताना चाहता हूँ जिन पर विद्वानोंको विचार कर नई पीढ़ीकी आस्थाको बलवती बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि विश्व कल्याणके लिये जैनधर्मने तत्कालीन युगकी परिस्थितिके अनुरूप समस्याओंको सुलझानेमें अपनी विशेष योग्यताका परिचय दिया है। उसने अपने समयमें विश्वकी व्याख्या करनेमें पर्याप्त वैज्ञानिक दृष्टिकोणका उपयोग किया है। फिर भी, आजके यन्त्र एवं प्रयोग प्रधान वैज्ञानिक युगमें तत्कालीन कुछ मान्यताएँ विसंगत सिद्ध हो जावें, तो इसे आश्चर्य नहीं मानना चाहिये। धार्मिक व्यक्तियोंका मुख्य लक्ष्य आचारशास्त्र और नैतिक मूल्योंका प्रतिपादन रहा है। धर्म गुरुओंने नये तीर्थ या धर्मका निर्माण किया है, नये विज्ञान, भूगोल, खगोल या इतिहास शास्त्रका नहीं। इनके विषयमें की गई चर्चाएँ धर्म प्रभावना मात्रकी दृष्टिसे गौणरूपमें ही मानी जानी चाहिये। फिर भी, जैनोंकी अनेक मान्यतायें उनके सूक्ष्म निरीक्षण सामर्थ्य एवं वैज्ञानिक चिन्तनकी प्रतीक हैं।

ग्रहोंकी गति

प्रकाशके संचरणके लिये माध्यमकी आवश्यकता होती है। वैज्ञानिकोंने किसी समय ईश्वरके रूपमें इस माध्यमकी कल्पना की थी। जैनोंने दो हजार वर्ष पूर्व ही यह चिन्तन किया था और धर्मद्रव्यकी कल्पना की गई। इसी प्रकार स्थिति माध्यमके रूपमें अधर्मद्रव्यकी कल्पना हुई। इन दो द्रव्योंकी मान्यताओंसे पता चलता है कि जैनोंको यह ज्ञान था कि चलता हुआ पदार्थ तब तक नहीं रुक सकता जब तक उसे कोई सहायक न मिले। न्यूटनका जड़त्व सिद्धान्त भी यही मानता है। इसी कारण पृथ्वी आदि विभिन्न ग्रह अनादि कालसे ही अविरत गति कर रहे हैं। संभवतः यह गति तब तक चलती रहेगी जब तक कोई ग्रह उससे टकरा न जाय। जड़त्व सिद्धान्तके अनुसार ग्रहोंकी यह गति प्राकृतिक ही होनी चाहिये। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि जड़त्व सिद्धान्तका मौलिक तथ्य जाननेके बाद भी ग्रहोंकी अविरत गतिके लिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनोंने उसका उपयोग नहीं किया, इसके विपरीत उन्होंने राजवार्तिक तथा त्रिलोकसारके अनुसार यह माना कि चन्द्र, सूर्य आदिके बिम्बोंको चलने के लिये सोलह हजार देवता अपनी ऋद्धिके अनुसार सिंहगज, वृषभ आदिके रूपमें निरन्तर लगे रहते हैं। छोटे ग्रहोंके बिम्बोंके वाहक देवताओंकी संख्या क्रमशः कम होता है।

सूर्योदय और सूर्यास्त

जैन शास्त्रोंके अनुसार सूर्य तपाये सोनेके समान चमकीला, लोहिताक्ष मणिमय, ४८.६१ योजन लम्बा-चौड़ा (व्यास), २४.११ योजन ऊँचा, तिगुनेसे अधिक परिधि, १६००० देवताओंसे वाहित बीचमें कटे हुये आधे गोलेके समान है। यह सूर्य जम्बूद्वीपके किनारे-किनारे प्रदक्षिणा करता है। जब सूर्य निषध पर्वतके किनारे पर आता है, तब लोगोंको सूर्योदय मालूम होता है। जब यह सूर्य निषध पर्वतके पश्चिम किनारे पर पहुँचता है, तब उसका अस्त होता है। अब यदि कोई मनुष्य उदय होते समय सूर्यकी ओर मुख करके खड़ा हो जाय, तो वह देखेगा कि सूर्यका अस्त पीठकी तरफ नहीं हुआ है किन्तु बाएँ हाथकी तरफ हुआ है। पीठकी तरफ तो लवण समुद्र रहेगा, उस ओर सूर्य नहीं जाता। इस ओर कोई पर्वत न होनेसे सूर्यको कोई ओट न मिलेगी, इसलिये सूर्य अस्त न होगा। यदि निषधकी पूर्वी नोंककी ओर कोई मुख करके खड़ा हो जाय, तो निषध पर्वतकी पश्चिमी नोंक उस आदमीके उत्तरमें पड़ेगी। इसका यह अर्थ है हमारी दृष्टिमें सूर्य पूर्वमें उगता है और उत्तर में डूबता है। यह मत कितना अनुभव विरुद्ध है, इसे सभी जान सकते हैं।

यही नहीं शास्त्रोंमें यह बताया गया है ज्योतिबिम्बोंके अर्धगोलकका गोल हिस्सा नीचे रहता है और चौरस विस्तृत भाग ऊपरकी ओर रहता है। चूँकि हम उनका गोल हिस्सा ही देख पाते हैं, इसलिये वे हमें गोलाकार दिखते हैं। सूर्य विश्वकी यह आकृति उदय-अस्तके समय दिखनेवाली आकृतिसे मेल नहीं खाती। क्योंकि यदि आधी कटी हुई गेंद हमारे सिरपर हो, तब तो वह पूरी गोल दिखाई देगी। किन्तु वह यदि सिर पर न हो, बहुत दूरपर कुछ तिरछी हो, तो वह पूरी गोल दिखाई न देगी, किन्तु वह अष्टमीके चन्द्रके समान आधी कटी हुई दिखाई देगी। परन्तु सूर्य तो उदय, अस्त और मध्याह्नके समय पूरा गोल दिखाई देता है और चन्द्रमा भी पूर्णिमाकी रातमें उदय, अस्त और मध्यरात्रिमें पूरा गोल दिखाई देता है। इस तरह तीनों समयोंमें आधी कटी हुई गेंदके समान किसी चीजकी एक-सी आकृति नहीं दिख सकती।

जैनोंकी आधी कटी गेंदकी आकृतिकी कल्पनाका आधार यह था कि आधे कटे सपाट मैदानपर नगर और जिन मन्दिर प्रदर्शित किये जा सकें। पर यह आकृति सदैव गोल दिखती है, यह कल्पना कुछ विसंगत प्रतीत होती है।

सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण

जैनशास्त्रोंके अनुसार सूर्यग्रहण इसलिये पड़ता है कि उसके नीचे केतुका विमान है। इसी प्रकार चन्द्रग्रहण भी इसीलिये होता है कि उसके नीचे राहुका विमान है। चन्द्रमाकी कलाओंके घटने-बढ़नेका कारण भी उसके नीचे स्थित राहुका विमान ही है।

राहु और केतुके विमानोंका विस्तार कुछ कम एक योजन है, जो सूर्य और चन्द्रके विमानोंसे कुछ बड़े हैं। ये छह महीनेमें सूर्य और चन्द्रके विमानोंको ढँकते हैं। इस मान्यतामें भी निम्न विसंगतियाँ प्रतीत होती हैं :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) जैनशास्त्रोंके अनुसार अष्टमीका आधा चन्द्र कभी दिखाई नहीं दे सकता। एक गोल चीजको किसी दूसरी गोल चीजको ढँककर देखो, वह अष्टमीके चन्द्रकी तरह आधी कटी कभी न दिखाई देगी। दो गोल सिक्के हाथमें लो और एकसे दूसरा ढँको। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि ढँका हुआ सिक्का आधा कटा हुआ-सा दिखाई देने लगे। वह द्वितीया-तृतीयाकी तरह अवनतोदर टेढ़ी कलाएँ ही दिखायगा। अष्टमीके बाद चतुर्दशी तक चन्द्रमाकी जैसी शकल दिखाई देती है, वैसी शकल राहु विमान द्वारा ढँकनेपर कभी दिखाई नहीं दे सकती। ऊपरोक्त प्रयोगसे यह असंगति भली-भाँति ध्यानमें आ जाती है।

(२) राहु और केतुके विमान चन्द्र और सूर्यके नीचेकी कक्षामें भ्रमण करते हैं। ये सदा नीचे नहीं रहते। केतुका विमान तो वर्षमें दो बार अमावस्याके दिन सूर्यके विमानके नीचे आता है। इसी प्रकार राहुका विमान भी तिथिके अनुसार नीचे आता है और कुछ आगे-पीछे होता रहता है और ग्रहणकी पूर्णिमाको सदा या नियम भंगका फिर चन्द्रमाके नीचे आ जाता है। यह स्मरणीय है कि विमान देवता चलाते हैं। क्या ये देवता पंचांगके अनुसार धीमी या तेज गतिसे दौड़ लगाते हैं? क्या ये देवता इस प्रकार हिसाब लगाते रहते हैं और विमानोंको तिथिके अनुसार मन्द-तीव्र गतिसे दौड़ाते रहते हैं? वे ऐसा क्यों करते हैं? एक-सी गति रखकर निश्चिन्ततासे अपना कर्तव्य क्यों नहीं करते? वे यदि सदा बचकर रहें, तो सदा पूर्णिमा हो और ग्रहण कभी न हो। क्या ही अच्छा रहे यदि देवता मानव जातिपर इतनी कृपा कर सकें जिससे वे स्वयं भी निश्चिन्त रह सकें और मानव समाजको भी तिथियों आदिके चक्करसे मुक्ति दिला सकें।

(३) जब आकाश स्वच्छ होता है, तब शुक्ल पक्षकी तृतीयाके दिन चन्द्रमाकी मुख्यतः तीन कलाएँ दिखायी देती हैं पर बाकी चन्द्रमा भी धुँधला-धुँधला दिखता है। जब राहुका विमान बीचमें आ गया है, तब पूरा चन्द्रमा धुँधला-धुँधला भी क्यों दिखता है?

आकाशमें विमानोंकी स्थिति

शास्त्रोंके अनुसार, सूर्य, चन्द्र आदि विमान भारी होते हैं। इसलिये वे अपने आप आकाशमें नहीं रह सकते। उन्हें सम्हालनेके लिए देवताओंकी आवश्यकता होती है। परन्तु ये देवता किस प्रकार आकाशमें रहते हैं? क्या ये देवता हाइड्रोजनसे भरे हुए गुब्बारोंके समान होते हैं जो हवासे हल्के होनेके कारण हवामें बने रहते हैं, उनका वैक्रियक शरीर ऐसा कैसे हो जाता है कि वे नाना आकार धारण कर ठोस विमानोंको रोक सकें? यदि विमान रोकनेके लिए वे अपने शरीरको ठोस बना लेते हैं, तो यह शरीर आसमानमें कैसे बना रहता है?

साथ ही, एक अन्य तथ्य और भी ध्यानमें आता है। वर्तमानमें हम यह जानते हैं कि आसमानमें ऊपर जानेपर वायु विरल होती जाती है। इसलिये ऊँचाईमें जानेपर मनुष्यको ऑक्सीजन साथमें ले जाना पड़ता है। ऐसी स्थितिमें हजारों योजन ऊपर कार्य करनेवाले ये देवता जीवित कैसे रहते होंगे? क्या ये बिना ऑक्सीजनके ही जीवित रहते हैं? यह देखा गया है कि सामान्य मनुष्य ५–६ मीलकी ऊँचाई पर बिना ऑक्सीजनके जीवित नहीं रह सकता।

इस स्थितिमें सूर्य, चन्द्र आदि विमानोंकी विभिन्न ऊँचाइयों पर स्थित तथा उनके वाहक देवताओं के वर्णनकी व्याख्याके लिए पुनर्विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

सूर्य-चन्द्रकी ऊँचाई

शास्त्रोंके अनुसार विभिन्न ज्योतिर्गण आकाशमें भूतलसे ७९० से ९०० योजनकी ऊँचाई पर स्थित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। यदि एक योजन ४००० मीलका माना जाता है, तो चन्द्र, सूर्य आदि प्रमुख ग्रहोंका विवरण सारणी १ के अनुसार प्राप्त होता है। इसी सारणीमें आधुनिक मान्यताओंका भी विवरण दिया गया है। इससे दोनों मान्यताओंकी विसंगति स्पष्ट है। बीसवीं सदीका मस्तिष्क इस विसंगतिकी व्याख्या भी चाहता है।

सूर्य-चन्द्रकी गति

शास्त्रोंके अनुसार जम्बूद्वीपकी परिधि लगभग ३१६२२८ योजन है। इसे सामान्य भागमें व्यक्त करनेपर यह १२६४९१२००० मील होती है। यदि सूर्यचन्द्र इसे ४८ घंटेमें पूरा करते हैं, तो इनकी गति २,६३,५१,९१६ मीलघंटा प्राप्त होती है, को १-२५ × $१०^{६}$ मीटर प्रति सेकेण्डके लगभग बैठती है। इतनी तीव्र गतिसे गतिशील बिम्बोंके ऊपर बने हुए भवनों और जिन मन्दिरों की स्थितिकी कल्पना ही की जा सकती है जब हमें वह ज्ञात होता है कि कुछ सौ मीलकी रफ्तारका तूफान ही भूतल पर प्रचण्ड विनाश-लीला उत्पन्न करता है। आज कल उपग्रह विद्याका पर्याप्त विकास हो गया है। इसे ३५००० कि०मी० की रफ्तारसे छोड़नेपर ही यह पृथ्वीके क्षेत्रसे बाहर जा सकता है। परन्तु इस रफ्तारसे चलते समय परिवेशी वायुके सम्पर्कके कारण यह पर्याप्त उत्तप्त हो जाता है। यदि इनके निर्माणमें ऊष्मारोधी तथा अगल्य पदार्थोंका उपयोग न किया जाय, तो ये जलकर राख हो जावें। चन्द्र भी यदि इसी प्रकार वायु-मण्डलमें इस गतिसे भ्रमण करे, तो उसकी भी यही स्थिति सम्भावित है। मुझे लगता है कि इन मान्य-ताओंका आधार सम्भवतः ऊपरी क्षेत्रोंमें वायुकी उपस्थिति सम्बन्धी जानकारीकी अपूर्णता ही रही होगी। फिर भी, इन बिम्बोंकी गतिकी कल्पना स्वयंमें एक उत्कृष्ट चिन्तनके तथ्यको प्रकट करती है।

उष्णता और आतप

जैनाचार्योंने उष्णता तथा आतपका विवेचन अलग-अलग किया है। उन्होंने अग्निमें उष्णता मानी है और सूर्यमें आतप माना है। उष्ण वह है जो स्वयं गरम हो और आतप वह है जो दूसरोंको गर्म करे। यह भेद सम्भवतः आचार्योंके प्रकृति निरीक्षणका परिणाम है। उष्ण पदार्थका यह नियम है कि उससे जितनी दूर होते जाते हैं, उष्णताकी प्रतीति कम होती जाती है पर सूर्यकी स्थिति इससे बिलकुल भिन्न प्रतीत होती है। सामान्यतः पहाड़ोंपर उष्णता कम प्रतीत होती है जो भूतलकी अपेक्षा सूर्यसे कुछ समीप-तर हैं जब कि भूतलपर वह अधिक होती है। फलतः यह माना गया कि आतप वह है जो स्वयं तो उष्ण न हो पर दूसरोंकी उष्णता दे। सूर्य स्वयं उष्ण नहीं है, इसलिये उसके समीपकी ओर जानेपर गरमी क्यों बढ़ेगी? यही कारण है कि अनेक जैन कथाओंमें मनुष्य सूर्यके पाससे गुजरकर ऊपर चला जाता है, पर उसका कुछ नहीं होता।

इस प्रकरणमें भी तथ्योंके निरीक्षणकी कल्पनात्मक व्याख्या की गई है। वस्तुतः आधुनिक मान्यताके अनुसार सूर्य एक उष्ण पिण्ड है। उसकी उष्णता भूतलपर आकर संचित होती है, वायुमण्डलमें नहीं। अतः ऊपरी वायुमण्डलकी उष्णता भूतलकी तुलनामें कम होती जाती है।

जैनोंके भूगोल सम्बन्धी कुछ अन्य तथ्य

जैनाचार्योंमें प्राकृतिक घटनाओंके निरीक्षणका तीक्ष्ण सामर्थ्य था। उन्होंने अनेकों प्राकृतिक घटनाओं-का सूक्ष्म निरीक्षण किया और उनकी व्याख्याके प्रयत्न किये। पर प्रयोग कलाके अभावमें ये व्याख्यायें पौराणिक आख्यानोंके समकक्ष ही प्रतीत होती हैं। मैं नीचे कुछ ऐसी ही घटनाओंकी भी चर्चा कर रहा हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अ) समुद्रके बीचमें उठा हुआ पानी

जैन आचार्योंने समुद्रोंका अच्छा निरीक्षण किया। उन्होंने देखा कि एक किनारेसे देखनेपर समुद्रका पानी कुछ ऊँचा होता है और बादमें ढलता-सा लगता है। यह पृथ्वीकी गोलाईका चिह्न है। इस ऊँचे भागको शास्त्रोंमें यह कहकर सिद्ध किया है कि समुद्रका पानी बीचमें अनाजकी ढेरीकी तरह १६००० योजन ऊँचा है। इस ऊँचाईको २४००० वेलंधर नागदेवता स्थिर रखे रहते हैं। समुद्रमें तूफान आनेका निरीक्षण भी आचार्योंने किया और उसका कारण यह बताया कि समुद्रके नीचे कुछ पाताल हैं जिनके नीचे वायु कुमार जातिके देव और देवांगनायें खेलकूद करते हैं। इनकी क्रीड़ाके कारण ही समुद्रके बीचमें तूफान आता है और पानी ऊँचा-नीचा होता है। इस वर्णनमें एक महत्त्वपूर्ण तथ्यकी ओर और संकेत किया गया है। यह बताया गया है कि केवल लवण समुद्रमें ही यह ऊँचाई दिखती है, उत्तरवर्ती समुद्रोंमें जल समतल ही रहता है।

इन तथ्योंकी वर्तमान व्याख्या पृथ्वीकी गोलाई और चन्द्रकी आकर्षण शक्तिके आधारपर की जाती है।

(ब) शास्त्रोंके अनुसार भरतक्षेत्रके मध्यमें पूर्व पश्चिममें फैला हुआ विजयार्ध पर्वत है जो २५ योजन ऊँचा या वर्तमान एक लाख मील ऊँचा माना जाता है। इस विजयार्धपर दस योजन ऊँचाईपर मनुष्य और विद्याधर रहते हैं। वे वहाँ कृषि आदि षट् कर्म करते हैं। वर्तमानमें तो केवल ५-५० मील ऊँचा हिमालयकी उच्चतम पर्वत है, उससे ऊँचे पर्वतों और उनपर रहनेवाले विद्याधरोंकी कल्पना पौराणिक ही माननी चाहिये।

यह भी बताया गया है कि इसी विजयार्धकी गुफाओंसे समुद्रकी ओर जानेवाली गंगा, सिन्धु नदियाँ निकलती हैं। भाग्यसे, ये नदियाँ तो आज भी हैं पर विजयार्ध अदृश्य हैं। इसीके शिखरपर स्थित सिद्धायतन कूटपर २ मील ऊँचा, २ मील लम्बा और एक मील चौड़ा जिन मन्दिर बना हुआ बताया गया है। वर्तमान जगतके न्यूयार्क स्थित सर्वोच्च भवनकी तुलनामें जिन मन्दिरका यह भवन काल्पनिक और पौराणिक ही माना जायगा।

(स) जैन भूगोलके आधारपर छह माहके दिन और रात वाले क्षेत्रों, उल्काओं, पुच्छलतारों तथा ज्वालामुखीके विस्फोटोंकी उपपत्ति भी संगत नहीं हो पाती।

इसी प्रकार अन्य अनेक विवरणोंका भी उल्लेख किया जा सकता है।

उपसंहार

उपरोक्त विवरणमें मैंने कुछ भूगोल तथा ज्योतिर्लोकके प्रमुख ग्रहोंके सम्बन्धमें शास्त्र वर्णित मान्यतायें निरूपित की हैं और यह बताया है कि ये मान्यतायें आजके वैज्ञानिक निरीक्षणें एवं व्याख्याओंसे मेल नहीं खातीं। परीक्षा प्रधानी जैन विद्वानोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये और शास्त्रोंकी प्रमाणिकताको बढ़ानेमें योगदान करना चाहिये। मेरे इस सुझावका आधार यह है कि जैनाचार्योंमें प्रकृति निरीक्षणकी तीक्ष्ण शक्ति थी। वे विज्ञानके आदिम युगमें उसकी जैसी व्याख्या कर सके, उन्होंने की है। पर वही व्याख्या वर्तमान प्रयोग-सिद्ध और तर्क-संगत व्याख्याकी तुलनामें यथार्थ मानी जाती रहे, यह जैनाचार्योंकी वैज्ञानिकताके प्रति अन्याय होगा। इन आचार्योंके निरीक्षणों और वर्णनोंका तत्कालीन युगमें मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता रहा है। इसलिये आज भी ये वर्णन धर्मशास्त्रके अंग बने हुये हैं। इन्हें वैज्ञानिक नहीं माना जाना चाहिये और इस आधारपर धर्म और विज्ञानको टकरानेकी स्थितिमें न लाना चाहिये। अनेक विद्वान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैज्ञानिक सिद्धान्तों या व्याख्याओंकी परिवर्तनशीलताके आधारपर उसे सत्य नहीं मानना चाहते, वे धर्मको शाश्वत मानकर उसे ही प्रश्रय देना चाहते हैं। इस विषयमें मैं केवल यही कहना चाहता हूँ (जैसा प्रारम्भमें ही कहा है) कि धर्मका उद्देश्य मानव जीवनमें सदाचार, सहयोग, शान्ति और सुव्यवस्था उत्पन्न करना है। विश्व रचना या भूगोल सम्बन्धी तथ्योंका क्षेत्र तो विज्ञानका ही है। दोनोंको सहयोगपूर्वक अपना कार्य करना चाहिये, टकराहटका कोई प्रश्न ही नहीं होना चाहिये। ऐसे ही प्रकरणोंमें अनेकान्त दृष्टिकी परख होती है।

सारणी—१ : कुछ ग्रहोंके आगमिक और वैज्ञानिक विवरण

(योजन = ४००० मील)

	पृथ्वी		चन्द्र		सूर्य	
	आगमिक	वैज्ञानिक	आगमिक	वैज्ञानिक	आगमिक	वैज्ञानिक
पृथ्वीसे दूरी लाख मील	—	—	३५-२०	२-३१	३२	९३०
व्यास, मील	$९ \times \frac{८}{१०}$	७५६०	$३६७२\frac{८}{६१}$	२१६०	$३१४७\frac{३३}{६१}$	८,६५०००
मोटाई, मील	—	—	$१८३६\frac{४}{६१}$	—	$१५७३\frac{४७}{६१}$	
अक्षणभ्रमण (घूर्णन) घंटे		२३-९	कुछ कम २५		२५	
सूर्यकी परिक्रमाका समय, दिन		$३६५\frac{१}{४}$	$२७\frac{२१}{६७}$	२८	३६६	—
गति मील, मिनट	—	—	४-२२-४-३१		$४-३९-४-४२\frac{५}{१०}$	
किरणों की संख्या	—	—	१२०००		१२०००	—
वाहक देवता	—	—	१६०००		१६०००	—
परिवारके सदस्य	—					
तारा	—	—	$६-६९७५\frac{९}{१०}$		—	—
नक्षत्र	—	—	२८			
ग्रह	—	—	८८			
परिवार			४ परदेवियाँ १६००० देवियाँ		४ परदेवियाँ १६००० देवियाँ	
आयु	—	—	१०३८-४५ + १००० वर्ष		१०३८-४५ + एक लाख वर्ष	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org